यूनिवर्सिटी मजदूर

अप्रैल 2015 | सहयोग राशि 2/- | निजी संचलन | 9

विश्वविद्यालय में आवास

बाकी जगहों की तरह ही विश्वविद्यालय में काम करना केवल यहीं तक सीमित नहीं कि हम शिक्षकों, छात्रों , सफाईकर्मियों या कलर्कों की तरह क्या करते हैं। यहाँ से हम घर वापस जाते हैं - मसलन अपने हॉस्टल रूम में, पी. जी. में, भाड़े के कमरे में, माँ-बाप के घर में , कर्मचारी क्वाटर्स में। मजदूरों की आवास स्थितियों को देखने से साफ़ दीखता है कि काम अच्छी ज़िन्दगी नहीं लाता। हमें जिंदा रहने दिया जाता है ताकि हम काम कर सकें। रहने की जगहें जीवन की बुरी स्थितियों का पता देती हैं। मजदूरों में सबसे ज्यादा पगार पाने वाले शिक्षकों को भी लम्बी प्रतीक्षा सूची में लड़ने के बाद एक टूटा-फूटा पुराना घर मिलता है, जो केवल पैसा खाता है। कम वेतन पाने वाले नॉन टीचिंग कर्मचारियों को मिलने वाले आवास की स्थिति और भी खराब है। छात्रों के रूप में यूनिवर्सिटी मजदूरों के सबसे बड़े हिस्से के लिए स्थिति उनसे भी खराब है। शिक्षा पर खर्चे का छोटा हिस्सा ही फीस के रूप में जाता है जबकि खर्च का बहुत बड़ा हिस्सा तो रहने और जीने में निकल जाता है (सब्सिडी पाने वाले सरकारी संस्थानों में तो ऐसा होता ही है)। सब्सिडी प्राप्त हॉस्टलों की भयानक कमी वाला दिल्ली विश्वविद्यालय इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। एक अदद यूनिवर्सिटी डिग्री पाने तथा मजदूरों और ज्ञान के सह-उत्पादन के लिए देश के कई हिस्सों से आने वाले छात्र काफी सारा पैसा केवल इसलिए खर्च करते हैं ताकि यूनिवर्सिटी के नजदीक रह पायें। अन्य कई आने-जाने में काफी समय और पैसा देते हैं। दूसरे यूनिवर्सिटी मजदूर थोड़ा-बहुत रेंट एलाउएन्स पाते हैं क्योंकि उन्हें मजदूर माना जाता है। खर्च और हाईजीन से लेकर लैंगिक भेद-भाव और ह्यूरास्मेंट को लेकर कई सारे छात्र संघर्ष पिछले दिनों आवास-प्रश्न के इर्द-गिर्द विश्वविद्यालयों में जारी हैं। हाल में ही कुछ छात्रों ने अपनी मांगों के साथ रेंट स्ट्राइक कर डाला। इटली, UK के साथ-साथ भारत में भी छात्रों ने आवास के खर्चे और स्थितियों पर हमले किये हैं। दुनियाभर में ऐसे संघर्षों के दौरान आवास को लेकर छात्रों के संघर्ष युनिवेर्सिटी के आस-पास रह रहे दूसरे मजदूरों के संघर्ष से जुड़ते गए हैं। आगे आप आवास की स्थितियों और आवास को लेकर चलने वाले संघर्षों की रिपोर्ट पढ़ेंगे।

मिरांडा हाउस हॉस्टल

फर्स्ट इयर की दो छात्राओं को अपना हॉस्टल आमतौर पे साफ़-सुथरा लगता है, लेकिन पिछले कुछ दिनों से उन्हें पीने को नीला पानी मिल रहा है। उनसे कुछ कम पैसे नहीं लिए जाते- एक शेयर्ड कमरे के लिए साल के चालीस हज़ार! मई जून की गर्मी में भी उन्हें कमरों में कूलर लगाने नहीं दिया जाता। या तो वे अपना कमरा खुद साफ़ करें या फिर सफाई-कर्मियों को दस-बीस रोज़ दें। एक छात्रा कई ऐसे मामलों की साक्षी रही है जहाँ सीनियर छात्र जूनियरों पर दबाव डालते हैं कि हॉस्टल के बारे में कभी कुछ न बोलें। उलटे जो है उसकी वाहवाही करें। उसने ये भी बताया कि कर्फ्यू तोड़ने पर छात्राएं ही शिकायत करती हैं। कईयों को लगता है कर्फ्यू बहुत ज़ल्दी ही लग जाता है, शाम 7.30 बजे! कुछ लोग कॉलेज की दीवार लांघ कर इससे निकलते है। दूसरे महिला छात्रावासों की छात्रावासों की तरह ही वार्डन और छात्राओं द्वारा नैतिक पुलिसिंग यहाँ आमबात है। यह एक ऐसी बात है जो विरोध प्रदर्शनों में बार बार उभरकर सामने आती है। दूसरे कॉलेज की एक छात्रा ने कहा कि कई माँ-बाप कठोर नियंत्रण की बिनाह पर ही अपनी बेटियों को यहाँ भेजते हैं। कर्फ्यू-विरोधी आन्दोलन अगर इस सच्चाई को नज़रंदाज़ न करें तो समझ जायेंगे कि कुछ लोग ऐसे आन्दोलन में क्यूँ नहीं शामिल हो पाते। सीधे-सीधे उन्हें दकियानूसी कहने से आन्दोलन न केवल अभिजनवादी रूख लेता है बल्कि संवाद की संभावना भी समाप्त कर देता है।

जे.एन.यू. हॉस्टल

हॉस्टल ,ख़ास कर पुराने हॉस्टल छात्रों के साथ-साथ खटमलों और चूहों के भी घर हैं। यह बात सही है कि JNU उन इक्के-दुक्के युनिवर्सिटियों में है जो काफी सब्सिडी पाती हैं, जहाँ रहने का खर्च कम है और जहां ज़्यादातर लोग कमरा पा जाते हैं (हांलांकि कमरा मिलने में कभी-कभी तीन से चार सेमेस्टर भी लग जाते हैं और इस इंतज़ार में बाहर काफी पैसा रूम रेंट में देना पड़ता है)। कम खर्चे की चमक कई बार तब फीकी पड़ जाती है जब आपको सुनने को मिले कि टूटी छत गिरने से एक गर्भवती पीएचडी छात्रा की जान जाते-जाते रही। छात्रों का कहना है कि हॉस्टल प्रशासन और यूनियन, हॉस्टल फण्ड की हेराफेरी छिपाने के लिए कई बार कमरों का औचक निरीक्षण करते हैं और भारी फाइन इकट्ठा करते हैं।

मजदूरों की रहने-खाने की स्थिति पर एक नज़र साफ़ कर देती है कि काम अच्छे जीवन के लिए नहीं किया जाता। हमें जीवित रखा जाता है ताकि हम काम करें।

छात्रों की रेंट स्ट्राइक

छात्र मजदूर है!!

आपको डिग्री की ज़रुरत है, और आप सालों बिता देते हैं ऐसी चीज़ों पर जो आपको पसंद भी नहीं, ताकि आपको नौकरी मिले। आप काम करते हैं ताकि यूनिवर्सिटी ज्ञानोत्पादन कर सके, अनुशासित मजदूर तैयार कर सके, मुनाफा बयान कर सके। और उसके बाद मकान मालिक को और पैसा दीजिये। किसी और का काम करने के लिए हम पैसा क्यों दें? किसी और के लिए काम सीखने के लिए पैसा क्यों खर्च करें?

अक्टूबर 2014, डीयू के नार्थ कैम्पस में क्रिस्चियन कॉलोनी के किराएदारों ने रेंट देने से मना कर दिया जबतक कि मकान-मालिक भाड़े की रसीद देने को तैयार नहीं हो गए। उन्होंने कहा कि इससे साबित हो जाएगा कि एक ही इलाके में भाड़ों में कितना अंतर है। लेकिन जब यह सब कुछ चल रहा था तब स्पष्ट था कि हड़ताल केवल दाम के लिए नहीं था। कॉलोनी में करीब 150 मकान हैं जो मुट्ठीभर बिल्डर्स के कब्जे में हैं। कमरे 6x6 से 6x8 फीट के हैं। रौशनी नहीं है। थोड़ी बहुत हवा है। बहुत कम कमरे हैं जहाँ साथ में बाथरूम है; आमतौर पर दस कमरों पर एक बाथरूम है। पानी 'जहरीला' है। गलत मीटर के कारण हमेशा ही ज्यादा बिजली-बिल आता है। किराया है 2000 से 4500। किराए का कोई इकरारनामा नहीं है, पुराने किरायेदार कम देते है। ज्यादातर किरायेदार डीयू के छात्र हैं, दूसरे कई सिविल सेवा की तैयारी करते हैं और कोचिंग लेते हैं। बहुत सारे लोग उत्तरपूर्व और बिहार से हैं। मकान-मालिक उनका हवाला 'चिंकी' और 'बिहारी' कह कर देते हैं। सचित (वह इसाई है और ST है) ने यहाँ आकर प्रतियोगिता परीक्षाओं की तैयारी करने से पहले साल भर तक इंडिया सेलुलर में काम किया। उसने सोचा था कि बचत के पैसों से काम चला लेगा। लेकिन अब वह पूरी तरह अपने माँ-बाप पर आश्रित है। वह एक 6000 रूपये के कमरे का हिस्सेदार है और 2500 खाने पर खर्च करता है। उसका अधिकाँश पैसा कोचिंग खा जाता है। नरेश (M.Phil, हिंदी) BPL परिवार से आता है। वह 2000 रुपया कमरा भाड़ा देता है (उसका रूम-मेट भी इतना ही देता है) और खाने में 3000 चला जाता है। इतना सब वह एक फेलोशिप के चलते वहन कर पाता है। पैसे बचा कर वह अपने परिवार की मदद करना चाहता है। वह तो संभाल लेता है लेकिन उसका कहना है कईयों को खाने और रेंट में से किसी एक को चुनना पड़ता है। ट्यूशन के ऊपर रेंट देना कईयों के लिए विश्वविद्यालय का रास्ता रोक देती है, भले ही वह ऐसी स्थितियों में रहने को तैयार हो। यह मजाक नहीं तो क्या है: आपको डिग्री लेना है तो वर्षों ऐसे काम करने होंगे जो आपको पसंद नहीं, काम करना होगा, ज्यादा से ज्यादा। आप काम करें ताकि युनिवर्सिटी ज्ञान और अनुशासित कामगार पैदा कर सके, मुनाफा बना सके, और इस बीच मकान-मालिकों की जेब भी भरती रहे। दूसरों के लिए काम करते हुए, दूसरों के लिए काम सीखने हेतु हम क्यों पे करें ? कर रहे हैं और मजदूर होना सीख रहे हैं। और यह सही है कि बाकी मजदूरों की तरह ही अधिकारों की मांग करने का कोई मतलब नहीं- उसे हम छीन लेंगे! **(शेष पे.3. पर ~)**

किराए पर रहना (जे.एन.यू. के पास)

मैं डीयू में पढ़ाता हूँ और मेरी साथी जे.एन.यू. से PHD कर रही है। हम लोग 105 के पास मुनिरका के एक सर्वेन्ट्स क्वार्टर में रहते हैं जिसे लोगों ने गैरकानूनी रूप से रेंट पे उठा रखा है। एक कमरा है साथ में बाथरूम। बिजली पानी काट कर 5000 महीने का देते हैं। कोई रेंट एग्रीमेंट नहीं, कोई रेंट रशीद नहीं। टूट-फूट का खर्च भी हम ही उठाते हैं। ज़्यादातर कमरों में सामान रखने की जगह भी नहीं है। वैसे हमारे कमरे में एक-दो अलमारियाँ हैं। रूम थोड़ा छोटा ज़रूर है पर आस-पास साफ़-सुथरा है।

क्रिस्चियन कॉलोनी के छात्र साथ संघर्ष कर मकानमालिकों और कॉन्ट्रक्टरों से जीते। और जगहों पर छिट पुट प्रतिरोध दिखता है - किराया देर से देना, छिपा कर ज्यादा लोगों का साथ रहना आदि...यह कैसे हो कि यह किरायदार साथ आकर लड़ाई लड़ सकें?

सबसे बड़ी दिक्कत सनकी मकान मालिक की निगरानी है। हमारी दोस्त को कुछ मेडिकल कारणों से अपना सर मुड़वाना पड़ा था। सभी आने-जाने वालों पर नज़र रखने वाली हमारी मकान-मालकिन को उसका आना बहुत अशुभ लगा। इसलिए अब मेरी दोस्त कॉलोनी के गेट पे आकर बाहर आने के लिए मुझे कॉल करती है। एकबार लगभग तय होने के बाद भी मेरे मकान-मालिक ने किराया नहीं लगाया जब उसे पता चला कि वह आदमी मुस्लिम है।

किराए पर रहना (DU के पास)

BA के पहले ही साल में रोज़ गाज़ियाबाद से नार्थ कैम्पस आने-जाने से तंग आकर मैंने अपने तीन क्लासमेट के साथ किराए पर रहने का फैसला किया। दिल्ली के पास की जगह से होने के कारण हॉस्टल मिलना कठिन था। वैसे भी हमने PG को सही समझा क्योंकि वहां साफ-सफाई के आलावा ज्यादा आज़ादी भी रहती है। किराये के पहले मकान में हम भाग्यशाली रहे। साफ़-सुथरा, अच्छी रौशनीवाला और सस्ता भी क्योंकि यह एक बड़े नाले के पास था। मकान-मालिक हर साल 10% किराया बढ़ाता गया और एक समय के बाद वह हमारी पहुँच के बाहर हो गया। एक बार जब दूसरे लोगों ने खाली कर दिया तो मुझे भी उसे छोड़ना पड़ा। उसके बाद मकान के मामले में भाग्य ने वैसा साथ नहीं दिया। खिड़कियाँ नहीं, रौशनी नहीं, एकांत नहीं। छोटे-छोटे कमरे ऐसे बने हैं कि बिना हर कमरे से गुजरे आप अंतिम तक नहीं पहुँच सकते। मतलब, सुविधा और हाइजिन जाये भाड़ में ,जितने ज्यादा लोगों को ठूंस सकते हो ठूंस दो। चलिए आप ज्यादा भाड़े पे राजी हैं क्योंकि वे आपको एक बेकार सी अलमारी भी दे रहे हैं, पर जिस दिन आप घुसते हैं दीमकों की फ़ौज तैयार मिलती है। सबसे खराब तो कॉमनवेल्थ गेम्स के समय हुआ। खेल के लिए होस्टलों को ज़बरन खाली करवाया गया। घबराए छात्रों को देख मकान-मालिकों को मौका मिल गया। उन्होंने किराए दोगुने कर दिए और जो फिर कभी कम नहीं हुए।

जे.एन.यू की सफाई कर्मचारी

यह महिला सफाई कर्मचारी जे.एन.यू के हॉस्टलों में 10 सालों से काम कर रहीं हैं और कुछ ऐसी भी हैं जो जे.एन.यू की स्थापना के समय से ही काम कर रहीं हैं। वे बताती हैं कि जबसे ठेकाकरण शुरू हुआ है, सफाई कर्मचारियों, मेस कर्मचारियों और 'कंप्यूटर पर काम करने वाले कर्मचारियों' की परमानेंट भर्तियां बांद हो गई हैं।पहले जे.एन.यू कर्मचारी यूनियन मुस्तैदी और सक्रियता से काम किया करती थी पर अब यूनियन वाले बस नेताओं की तरह पेश आते हैं।

अकादमिक मजदूरों का काम यूनिवर्सिटी में हो सके, इसके लिए मजदूरों के कई और तबको को भी श्रम लगाना पड़ता है। यूनिवर्सिटी में उत्पादन मेस मजदूरों, सफाई कर्मचारियों, इलेक्ट्रीशियन, आदि के बिना नहीं हो सकता। पर यूनिवर्सिटी इन मजदूरों और अकादमिक मजदूरों के बीच विभाजन की रेखाएं खींचती है। इस तरह के कामो को बाहरी कॉन्ट्रक्टरों को दे दिया जाता है, जिससे लगते है कि इन कार्यों को करने वाले मजदूर यूनिवर्सिटी उत्पादन में कोई भूमिका अदा नहीं करते, और यह काम वेतन देने का बहाना बन जाता है।

प्रत्येक हॉस्टल में 4 सफाई कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं। कूड़ा फेंकना ,कचरे के डब्बे साफ़ करना, हॉस्टल के गलियारे साफ़ करना, लगातार बाथरूम-शौचालय रगड़- रगड़कर साफ़ करने की ज़िम्मेदारी वे आपस में बांटते हैं। कई बार हॉस्टल में रहने वाली कुछ महिलाएं उनसे अपना कमरा भी साफ़ करवाती हैं और इस काम का उन्हें अलग से कोई पैसा नहीं मिलता।अक्सर कर्मचारियों की एक हॉस्टल से दुसरे हॉस्टल में बदली कर दी जाती है।एक जगह काम करते-करते कर्मचारियों के काम का एक बहाव बनता है, कुछ आदतें और आस-पास की चीज़ों/लोगों से कुछ रिश्ते बनते हैं, सुविधा के रस्ते बनते हैं और तभी उन्हें उस जगह से हटाकर किसी दुसरे हॉस्टल में भेज दिया जाता है। मर्द कर्मचारी अक्सर इधर-उधर टहलते-घुमते पाए जाते हैं और काम के बाद अपने साथियों से मिलते हैं , साथ में शराब भी पीते हैं पर महिला कर्मचारी काम ख़त्म होते ही घर के काम में व्यस्त होने के लिए लौट जातीं हैं।

छात्र जब साफ़ हॉस्टल और बेहतर खाने की मांग करते हैं तो उन्हें इन कार्यों को करते मजदूरों की तरफ भी नज़र उठानी होगी।

हाल ही में J.N.U के कुछ ऐसे मजदूरों ने मांग रखी कि उन्हें यूनिवर्सिटी सीधे काम पर रखे। कोई बिचौलिया कांट्रेक्टर न हो। छात्रों व अध्यापकों को चाहिए की वह इस मांग कर समर्थन करें और यूनिवर्सिटी के मजदूरों के बीच के विभाजन को ख़त्म करने की कोशिश करें।

अगर सारे कार्य ज़रूरी हैं तो वेतनों में अंतर क्यों?

महिला कर्मचारियों ने एक मित्र को बताया कि लाइब्रेरी और को-एड होस्टलों में उन्हें मर्दों के शौचालय भी साफ़ करने पड़ते हैं। उन्हें घिन्न अति है जब वे मर्दों के शौचालय साफ़ कर रही होती हैं और वे आते हैं और अपनी पतलून खोलकर उनके सामने ही मूतने लगते हैं। जब किसी कर्मचारी ने कहा कि तुम्हें शर्म नहीं आती तोह जवाब आया कि तुमसे क्या शर्म तुम तो जमादार हो।कई बार उनके निचली जाती के होने पर भी टिप्पणी की जाती है। एक बार एक महिला कर्मचारी इतनी परेशान हुई कि उन्होंने उनके सामने पैंट खोले खड़े एक लड़के के ऊपर गंदे पानी से भरी बाल्टी उड़ेल दी।

अब इन कर्मचारियों के बच्चे बड़े हो गए हैं पर जब वे छोटे थे तब नौकरी के साथ साथ उनका ख्याल रखने में बहुत तकलीफें होती थी। उन्हें सुबह बहुत जल्दी उठना पड़ता था और बच्चों को तैयार करना पड़ता था।बच्चों को घर में अकेला छोड़कर या पड़ोसी को जिम्मेदारी सौंपकर वे नौकरी पर आतीं थी। वे बताती हैं कि जे.एन.यू में माहौल अच्छा है। न कोई लड़ाई झगड़ा और कर्मचारियों के क्वार्टरों में अपने बच्चों को अकेला छोड़ने में उन्हें डर नहीं लगता।

महिला कर्मचारी सुबह 5 बजे उठतीं हैं और नौकरी के लिए निकलने से पहले घर का सारा काम-काज करती हैं। कुछ कर्मचारियों के लिए जे.एन.यू तक का सफर लम्बा पड़ता है। काम ख़त्म होने पर वे जल्द से जल्द घर पहुँचती हैं और खाना, बर्तन, झाड़ू आदि करतीं हैं। एक महिला बताती है कि जब उसके बच्चे स्कूल में पढ़ते थे तब वह कई बार कैसे देर रात तक कपड़े धोती रहती थी। दूसरी याद करती है जब अक्सर वह भाग दौड़ करके समय पर नौकरी करने पहुँचती थी और तब उसके हाथों पर सुबह की रोटियों का आटा चिपका होता था। हाथों से आटा छुड़ाने का समय उसे नहीं मिल पाता था। सभी बताती हैं कि उनके मर्द किसी काम क नहीं, वे घर के किसी भी काम में मदद नहीं कराते।

आंगनवाडी महिलाँ: हम मजदूर हैं!

जुलाई में दिल्ली के कई जगहों के आंगनवाडी मजदूरों ने खुद को संगठित कर के 23 दिन की हड़ताल की, और अपनी मांगों को भी दिल्ली राज्य से स्वीकार करवाया। उनको 'वालंटियर' की जगह में 'मजदूर' का ओहदा मिलना था। वैसे वालंटियर को मिलने वाले मानदेय (Rs.5000; हेलपर्स को Rs.2500) की जगह में कुशल श्रमिकों का न्युनतम वेतन (Rs.8000) मिलना था। ऐसा वादा किया गया था... लेकिन सितम्बर में आंगनवाडी के मजदूर राज्य की निष्क्रियता देख के फिर से धर्ना करने निकल आयीं। 'दिल्ली स्टेट आंगनवाडी वर्कर्स एंड हेलपर्स यूनियन' का झंडा ले के सी.एम. के घर पर प्रदर्शन निकाला। वे पूर्व-दिनांकित वेतन, स्थाई नौकरी, पेंशन और न्यूनतम वेतन मांग रही थीं। सरकार के पास इनकी कठिनाइयों का कोई समाधान उपलब्ध नहीं है।

आंगनवाड़ी के मजदूरों का कोई पक्का job description नहीं है, इसका मतलब है कि वे किसी भी काम पे लगायी जा सकती हैं। उनके अनेक कार्य 18 रजिस्टर में दर्ज किये जाते हैं : स्कूल ना जाने वाले 3-6 सालों कि उम्र के बच्चों के लिये 'in+ formal' शिक्षा प्रदान करना, बच्चों और गर्भवती औरतों को पोषक पूरक [nutri+ ent supplements] वितरित करना (याद कर के कि क्या किस को देना है), टीका सुनिश्चित करना, टीकों के लिये लोगों को औशधालय ले जाना, बच्चों को स्कूल में एडमीशन पाने में मदद करना, स्कूल ना जाने वाले बच्चों के लिये दोपहर का खाना खिलाना, गर्भवती औरतों के लिये in+ formation camps चलाना, दृश्य सहायता बनाना, सुपरवाइज़रों के लिये रिपोर्ट लिखना, और इलाकों में यादृच्छिक सर्वेक्षण करना। हर एक वर्कर-हैलपर टीम करीब हजार लोगों की ऐसी जरूरतों को संभालती है।

उनका संघर्ष ज़रूर ताकतवर था, और 'मज़दूर' का ओहदा पाना ज़रूरी था, परंतु क्या इन कठोर व अनन्त कार्यों के लिये न्युनतम वेतन पर्याप्त मुआवजा है? क्योंकि वे औरतें हैं और क्योंकि उनका काम 'औरतों का काम' माना जाता है (जैसे कि उनको यह काम करना 'प्रकृतिक रूप से' आता हो) इसलिये पितृसत्ताक व्यवस्था उनको कम पैसा आसानी से दे सकती है। 'आखिरकार, यह काम असल में उतना कठिन नहीं है, और औरतों के लीये तो बिलकुल भी नहीं! वैसे भी यह काम इतना महत्वपूर्ण नहीं है!' हाँ बिलकुल, बच्चों और औरतों की तबियत को संभालना बिलकुल अनावश्यक होता है!! कुछ आंगनवाड़ी मजदूरों ने हमें यह बताया कि 'आमिर खान सब लोगों को बताता है कि टीका लेने के लिये या गरभावस्था की देख-भाल के लिये नज़दीकी आंगनवाड़ी जाना चाहिये। लेकिन जिस परिस्थिति में आंगनवाड़ी मजदूर काम करती हैं, उस की बात कभी भी नहीं करते! ऐसा क्यों??'

आंगनवाड़ी मजदूरों का श्रम मजदूर वर्ग के उस तबके के लिया जरूरी है जो सबसे ज्यादा काम करता है , सबसे काम वेतन पाता है, और जिसके पास स्वास्थ्य सेवा और शिक्षण का और कोई साधन नहीं।

आंगनवाड़ी के बिना इस वर्ग के पुनरुत्पादन की लागत बहुत बढ़ जाएगी।

आंगनवाड़ी के काम को महिला कार्य कह कर सस्ता रखा जाता है। इस "सर्विस" को हम सरकार की कृपा मान लेते हैं और इसमें लगी महिलाओं के कठिन परिश्रम को अनदेखा कर देते हैं।

आंगनवाडी मजदूरों के ये अन्य काम बाकी लोगों की आम जिंदगी के लिये आवश्यक है। अक्सर जब सरकार से पैसा नहीं आता, ये मजदूर बच्चों के इलाज या औरतों को विटामिन प्रदान करने के लिये अपने जेब से ही पैसा खर्च कर देती हैं। उन अन्य इलाकों में जहाँ आंगनवाड़ी मजदूरों की जरूरत ज्यादा है, कई परिवार लम्बे समय तक काम करने के बावजूद बहुत कम पैसा कमा पाते हैं; कई सारे बच्चों के लिये आंगनवाड़ी मजदूरों के सिवा खाने और शिक्षा का और कोई साधन नहीं है। आंगनवाड़ी मजदूर ना होतीं, तो इन लोगों की जिंदगी ना केवल और महंगी हो जाती, बल्कि और अनिश्चित भी हो जाती।

गृहकार्य, पढ़ाना

एम.फिल. खत्म होते ही मैंने 21वीं सदी के अपने गृहस्थ जीवन की शुरुआत की, यानि की मैं अपने एक दोस्त के साथ एक फ्लैट मैं रहने लगा। माँ के साथ इक्का-दुक्का हाँथ बंटाने से परे अब पहली बार मैं गृहकार्य को भी नियमित रूप से काम की नज़र से देखने लगा। क्यूंकि मेरा और मेरे दोस्त का इरादा घर को साफ़ सुथरा रखने का था और हम अपने खाने के रूटीन की ओर भी ख़ासा ध्यान देना चाहते थे, इसलिए हमने सारा गृहकार्य खुद ही करने का फैसला किया। कॉलेज में पढ़ाने के साथ गृहकार्य का मेरा पहला अनुभव-कपडे धोना, खाना पकाना, अपना कमरा और ड्राइंग रूम साफ़ करना, समय समय पर पंखे, टॉयलेट, किचन और डस्टबिन साफ़ करना, ग्रोसरीज़ खरीदना, बल्ब, नल्का, वः ड्रेन रिपेयर करवाना (हमारे अपार्टमेंट की हालात थोडी जर्जर ही थी), कुकिंग गैस भरवाना - इतना अक्षम करने वाला रहा कि मैंने पूरे सेमेस्टर घर के दैनिक कामों के अलावा कुछ और किया ही नहीं । यहाँ तक कि जब मैं कॉलेज से परे खुद का कुछ अध्ययन करता - और ऐसे अवसर दुर्लभ थे - तब भी मैं अपने आप को यही सोचता पाता कि अभी कौन से घरेलु काम करने बाकि हैं और में उन्हें कब और कैसे करूँगा। मेरे दोस्त का अनुभव मुझसे कुछ अलग़ नहीं था, और उसने तो कॉलेज में पढ़ाने की अपनी बढ़िया सैलरी वाली नौकरी भी छोड़ दी क्यूंकि उसे अपने एक ट्रांसलेशन प्रोजेक्ट पर काम करने का समय ही नहीं मिल रहा था। कुछ काम करना तो दूर हम तो फोकस तक नहीं कर पा रहे थे! मेरे बाकि मद्द दोस्तों से अलग़, जो कि गृहकार्य को लेकर अपने रूममेट्स से अक्सर ही चिड़े और परेशान रहते, मेरे दोस्त और मैंने काम को हमेशा मिलजुल कर करने कि कोशिश की। तो इस तरह मेरा उसे "चीफ़ कुक" की पदवी से सविनय नवाज़ना और उसका मुझे "चीफ़ डिशवाशर" की बेशक साधारण लेकिन सहनीय उपाधि देना केवल मित्रता का प्रेमभाव नहीं था। बल्कि हमारे ये उपनाम अब नए "पेशों" के चलते हमारी व्यस्तता को बिलकुल सटीकता से बयां करते थे। उस पूरे सेमेस्टर मैं केवल अपने घरेलु कामों को आसान बनाने के लिए प्लान बनता रहा। क्या मुझे बर्तन कॉलेज से वापिस आते ही धो देने चाहिए, क्यूंकि थका होने के कारण मैं वैसे भी कुछ पढ़ने-लिखने की हालत में नहीं रहता, या मुझे बर्तन तब धोने चाहिए जब मेरा दोस्त खाना पका रहा हो, ताकि हम एक दूसरे से काम करते हुए बतिया भी सकें और अलग़ से गप्पें लड़ाने में समय बर्बाद न करें। या मुझे बर्तन डिनर खाने के बाद धोने चाहिए क्यूंकि इस तरह हमें सुबह किचन साफ़ करने की ज़रुरत नहीं पड़ेगी (पर क्या इससे मेरे डिनर करने का मज़ा किरकिरा नहीं हो जायेगा?)।

खराब मकान मतलब ज़्यादा गृहकार्य। ज्यादा किराया मतलब छात्रों को अकसर पैसों के लिये और काम उठाना पड़ता है।

कहा जाता है गृहकार्य अनंत है। मगर जैसे जैसे ज्ञानोत्पादन की गति बढ़ रही है वैसे वैसे अकादमिक कार्य भी अनंत होता सा दिखता है। दोनों परिस्थितियों में यह अनंतता काम का लक्षण नहीं, उसे जोतने के तरीका का लक्षण है। अकेले, विभाजित मजदूरों पर शासन तंत्रों द्वारा थोपा गया "उपयोगी काम" भी नीरस हो जाता है।

गृहकार्य जो छात्र, अध्यापक आदि, यह उनके वैतनिक (कामवाली, बावर्ची) या अवैतनिक (माँ, पत्नी) सहायक करते हैं, उसे यूनिवर्सिटी कार्य का ही अंग मानना चाहिए। क्या इसके बिना यूनिवर्सिटी में काम चल पाएगा।

हर उस व्यक्ति की तरह जिसने अपने अस्तित्व के super+ structure, जो कि हमारे दैनिक रोज़गार, नियमित घरेलु-श्रम और दिल्ली में प्रतिदिन सफर करने के अंतहीन और बेहद थका देने वाले चक्र पर निर्भर करता है, में बदलाव करने की कोशिश की है, मैंने भी जल्दी ही खुद को इस superstructure को नियंतर अपने अनुकूल बनाने की मनोग्रस्त अवस्था में पाया।

गृहकार्य का वास्तविक पहलू बेशक काफ़ी थका देने वाला था, लेकिन जीवन में पहली बार गृहकार्य करने के चलते मैं, चाहे रूमानी ही सही, गर्व ज़रूर महसूस कर रहा था। लेकिन शारीरिक पहलू से परे गृहकार्य के अंतहीन मानसिक तनाव से मुझे काफ़ी झटका लगा था।

इस बार जब मैं गर्मियों की छुट्टियों में घर गया तो मुझे पहली बार एहसास हुआ कि बेशक हम बाकि सभी थोड़ा-थोड़ा कर माँ का हाथ वास्तविक रूप से बंटा देते थे लेकिन गृहकार्य के चलते जो निरंतर मानसिक तनाव था वह माँ को अकेले ही झेलना पड़ता था।

M.Phil. और गृहकार्य

मेरे MPhil के दूसरे साल से मुझे अपने शोध-निबंध पर फुल-टाईम काम करना पड़ा। लाइब्रेरी डेढ़ घंटे दूर थी, इसलिए मैं घर से ही काम करना पसंद करती थी। पर परिवार की सबसे बड़ी बेटी होने के नाते, घर में रहने का मतलब था कि मुझे घर और घरेलु नौकरों का काम काज देखना पड़े- मेरा यह निरिक्षण करने वाला काम अक्सर अदृश्य रहता था और रहता है। मझे सुबह सात बजे उठना पड़ता था (जब बाकी सब निकल जाते हैं) ताकी प्रेस-वाले और नौकरानियों के लिए दरवाज़ा खोल पाऊँ। काफ़ी बार मुझे प्रेस के लिए कपड़े भी ढूंढने पड़ते थे। फिर नौकरानियां आती थी - एक खाना बनाने के लिए और एक सफ़ाई करने के लिए। खाना बनाने वाली दो बार आती थी। पहली बार लंच बनाने और दूसरी बार डिनर और नाश्ता। खाने में क्या बनाना है तय करके रसोइया को बताना, वाशिंग मशीन मे कपड़े चढ़ाना, नौकरानी को कपड़े सुखाने के लिए बोलना, देखना कि उसने कपड़ों पर क्लीप लगाए हैं की नहीं, और उनसे वह सारे काम करवाना जो मेरी माँ ने उनके लिए तय किये हैं - यह सब मेरे उपर आता था। में सिर्फ अपने शोध-निबंध पर काम नहीं कर रही थी। और हर बार जब मेंने इन कामों से बचने या उनको टालने के कोशिश कि तो सारा काम मेरी माँ पर पड़ता था। उनको दफ़्तर से फ़ोन कर कर नौकरानियो को काम समझाना पड़ता था।

हाँ, उनके काम से मेरी ज़िन्दगी आसान होती है, पर उसके लिए हम में से किसी एक को घर पर रह कर देखना पड़ता है कि सब कुछ ठीक से हो रहा है कि नही। और काफी परेशानी भी होती थी क्योंकि किसी भी मज़दूर कि तरह ये भी अपने काम के खिलाफ़ विद्रोह करती थीं- कभी कुछ काम ठीक से नहीं करके तो कभी और जान-बूझ के काम छोड़ के। पहले मैं कुछ नहीं बोलती थी। पर उसकी वजह से हमारे बीच काफ़ी झगडे हुए (ज्यादातर मेरी माँ और मेरे बीच)। अक्सर दफ्तर से वापस आकर वह शिकायत करती थी कि रसोई की ताक ठीक से साफ़ नहीं करी गयी है, या खाना अच्छे से नहीं पका है। मुझे बार बार लोगों को याद दिलाना पड़ता था कि मैं MPhil कर रही हूँ, घर पर खाली नहीं बैठी हूँ!! घर के काम काज करने की बात तो छोड़ो, इन कामों का प्रबंधन करना और काम पर निरिक्षण रखना भी सामान रूप से नहीं साझा जाता था। इस सब कि जिम्मेदारी मुझपे और मेरी माँ पर आती थी; किसी वजह से मेरे पिता और मेरी बहन के लिए इन कामों से बचना आसान था।

हम जो यह इतना कर्म काम करते हैं पैसे कमाने के लिए - अभी या भविष्य में - इसकी वजह से और कई कार्यों पर ध्यान नहीं दे पाते। यूनिवर्सिटी काम भी कुछ ऐसा ही है। परिवार और दोस्तों के लिए वक्त नहीं छोड़ता। सफाई और खाना बनाने के लिए भी नहीं, और यह तो स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य हैं। कभी तो इन अन्य कार्यों में मन लगेगा, पर जैसे ही यूनिवर्सिटी के काम का बोझ बढ़ेगा, सब चौपट!

इसके अलावा मुझे ऐसा भी लगा कि मैं पूरी तरह से घर से बंधी हुई थी। "खाना ठीक से बना है कि नही", "चाबी कहाँ है" और ऐसी अनेक चिंताओं को दूर करे बिना मैं घर से निकल ही नहीं पाती थी। इस सबसे बचना भी नामुमकिन था क्योंकि घर के बाकी सारे मजदूरों का पुनोत्पादन (reproduction) मेरे इन कामों को करने पर निर्भर रहता था - लंच तैयार करना ताकि मेरी बहन को स्कूल से आके खाना मिले, स्कूल की यूनिफार्म को धुलाके प्रेस करवाना, ब्रेकफास्ट बनवाना ताकी मेरी माँ को बाहर जाने वालों के लिए टिफ़िन ना बनाना पड़े। हर दिन MPhil अकेले करने का अकेलापन और घर के इन कामों की नीरसता कि वजह से में काफी डिप्रैस हो गयी थी। और जल्द ही दोनों में मेरा मन नहीं लग रहा था। पर इन गर्मियों में स्थिति बदल गयी - मेरे पापा को घर के कामों में काफ़ी मदद करनी पड़ी क्योंकि उन्होंने अपनी नौकरी छोड़ दी थी और मैंने ग्यारह बजे से पहले उठना बंद कर दिया था।

संपर्क करें

Blog/ ब्लॉग
universitymajdoor.wordpress.com
Email/ ईमेल
universitymajdoor@gmail.com
Facebook/ फ़ेसबुक
facebook.com/UniversityMajdoor

छात्रों की रेंट स्ट्राइक

(~ पे.1. का शेष) हड़ताल के दौरान कभी-कभी यह सवाल भी उठा। उनकी तात्कालिक मांग थी- रेंट रशीद और रेंट का मानकीकरण, लेकिन हड़ताली अपने आवास के अधिकार पर भी जोर दे रहे। हालांकि इसे माना नहीं गया पर इस मांग का मतलब समझना महत्वपूर्ण है। ये छात्र दावा कर रहे थे कि यूनिवर्सिटी में होने के नाते उनको पूरा और मुफ्त आवास मिलना ही चाहिए। हम मकान-मालिक से सौदा क्यूँ करें या इन खराब जीवन स्थितियों में क्यों रहें? हमलोग एक सामाजिक ज़रुरत को पूरा कर रहे हैं - हम ज्ञान का उत्पादन कर रहे हैं और मजदूर होना सीख रहे हैं। और यह सही है कि बाकी मजदूरों की तरह ही अधिकारों की मांग करने का कोई मतलब नहीं - उसे हम छीन लेंगे!

धीरे-धीरे बहुत सारे लोग आसमान छूते किरायों, बिजली बिल में जालसाजी, आसपास फैली गन्दगी के बारे में बहस करने लगे। मामले की गंभीरता को समझने के लिए उन्होंने jnu के पास 'चाय पे चर्चा' नाम से एक अनौपचारिक मीटिंग भी आयोजित की.।उन्होंने खोजबीन की। उन्होंने देखा कि यह इलाका पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) की साईट भी है और इतना ज्यादा निर्माण यहाँ निषिद्ध है। उन्होंने पता किया कि कौन सा मकान किस दलाल या बिल्डर के पास है और उनकी आय की गणना भी की- सालाना 19 लाख से 20 करोड़ ! मकान-मालिक रेंट रशीद देने का विरोध इसलिए कर रहे हैं ताकि वे टैक्स की चोरी कर सकें। उन्होंने यह पता लगा लिया कि दिल्ली के लिए एक रेंट कंट्रोल ऐक्ट है जिसके अनुसार इन कमरों का किराया पांच सौ से ज्यादा नहीं होगा। उन्होंने इलाके के छात्रों से रेंट स्ट्राइक की बात की , संगठित हुए और आखिरकार कॉलोनी के सामने 7 दिनों की एक भूख हड़ताल चालू कर दी।

मांगें थीं : 1) रेंट कंट्रोल कानून लागू करो और कॉलोनी को रेगुलराइज़ करो; 2) रेंट रशीद देना अनिवार्य करो; 3) बिजली, पानी और सफाई की बेहतर सुविधा मुहैया करो; 4) रेंट कंट्रोल क़ानून के तहत एक ट्रिब्यूनल के ज़रिये कमरा भाड़ा निर्धारित किया जाए। काफी विरोध के बाद मकान-मालिकों को कुछ मांगे माननी पड़ी - कमरा भाड़ा कम और नियमित करना पड़ा और भाड़े की रशीद देने को तैयार हो गए। किरायेदारों की जीत हुई थी। मांगों की सूची में रेंट नियंत्रण को शामिल करने का एक मनोरंजक परिणाम यह हुआ कि छात्रों के साथ-साथ पटेल चेस्ट के रेड़ा-पटरी वाले भी शामिल हो गए जो किराएदारों की तरह ही दूकानों को नियमित करने की समस्या से जूझ रहे थे। जाने अनजाने ही संघर्ष जब इस दिशा में बढ़ गया जहाँ बड़ी आबादी इसमें शामिल होने लगी तो सत्ता पर दबाव बढ़ने लगा। इससे भी बढ़कर इन दोनों आन्दोलनों में छुपी संभावना का विस्तार हुआ।

लेकिन अब यह आन्दोलन लगभग समाप्त है। भाड़े में कमी ने रेंट कण्ट्रोल और आवास के अधिकार की मांग को खत्म कर दिया। बाद में कुछ छात्रों ने सूचना दी कि उन्हें रशीद नहीं मिल रहा है। भाड़े में कमी से और एक कॉलोनी से आगे इस संघर्ष को कैसे ले जाया जाये? मकान भाड़ा नियंत्रण और आवास के अधिकार के वृहत्तर सवाल कहाँ चले गए? रेड़ा-पटरी वालों और दूसरे किरायेदारों के साथ जो नेटवर्क छात्रों का बना था उसका क्या हुआ? हमें यह भी सोचना चाहिए कि ऐसे संघर्षों को दूसरे इलाकों में कैसे संगठित किया जाये।

घरेलू कामकाज और पुरुषों के साथ जीवन

यहाँ तीन महिलाएँ अपने साथ रहने वाले पुरुषों और घर के कामकाज के बारे में वार्तालाप कर रही हैं। M दिल्ली विश्वविद्यालय में एक छात्रा है, वह अरुणाचल प्रदेश से आई है और अपने छोटे भाई के साथ रहती थीं। R AUD में छात्रा हैं और तीन पुरुष मित्रों के साथ रहती हैं जिन्हें वे कुछ समय से जानती हैं। B एक अध्यापिका हैं जोकि DU में पढ़ाती हैं और JNU में PhD कर रहीं हैं और अपने पति के साथ रहती हैं।

M: घर के कामों के मामले में तो काफी अंतर है। मैं दिल्ली में एक फ्लैट में रहती हूँ जहाँ मेरा छोटा भाई भी रहता था पर अब वह ज़्यादातर वहां नहीं रहता है। हमारे वह सारे रिश्तेदार जोकि दिल्ली आते हैं वे सभी मेरे यहाँ ही ठहरते हैं। जब भी मेरी कोई बहनें आती हैं वह हमेशा खाना बनाने और सफाई में मेरी मदद करती हैं। मेरे भाई ज़्यादा से ज़्यादा अपने बर्तन साफ़ कर देते हैं। लड़कियों को तो पूछना या कहना भी नहीं पड़ता, वे बस काम के समय हाथ बँटाने लग जाती हैं। लड़के ऐसा नहीं करते हैं। मेरे बड़े भाई तो इस मामले में काफी खराब हैं। और अब मेरा छोटा भाई भी वैसा ही होता जा रहा है। पहले तो हम उसे डाँट कर काम करवा सकते थे पर अब वह बदतमीज़ी करता है और उल्टे जवाब देता है। मेरे पिता ने भी इन दोनों को घर के काम में हाथ बँटाने को कहा। जब मेरे पिता यहाँ आते हैं, वे हमेशा मेरी मदद करते हैं पर घर में ऐसा कुछ नहीं करते।

R: मुझे अपने साथ रहने वाले लोगों से ज़्यादा सफाई की ज़रूरत महसूस होती है इसीलिए अमूमन मैं ही उन्हें सफाई करने के लिए कहती हूँ। पर एक सीमा के बाद मैं उन्हें कहना बंद कर खुद ही आम इस्तेमाल वाली जगहों को साफ़ करने लग पड़ती थी। वे लोग कचरा फैलाते थे और मैं उसे उठाती रहती थी। और फ़िर एक दिन आता था कि जब मेरे सब्र का बाँध टूट जाता था और मैं काफी उत्तेजित हो जाती थी। यह एक घटनाचक्र बन गया: मैं उन्हें कहती रहती थी - फिर खुद ही काम करती थी - और खुद ही गुस्सा होती रहती थी।

B: मुझे पता है तुम क्या कह रही हो! इसी बात के ऊपर मैं और मेरे पति तब से झगड़ा करते आए हैं जब से हमने साथ रहना शुरू किया है। झगड़ा कहना शायद गलत होगा, ऐसा नहीं है कि वह खुद की सफ़ाई देते हैं। तुरतं अपनी गलती समझ कबुलते हैं। पर यह हर महीने की बात है।

R: और बाथरूम!! मैं कसम खाती हूँ कि कई दिनों पर मैं कॉलेज के गन्दे शौचालय को तरजीह देती थी। उन्हें शौच पात्र में मल के रह जाने से कोई फर्क ही नहीं पड़ता। आख़िर कितना मुश्किल हो सकता है कि आप ध्यान रखें कि इस्तेमाल के बाद मल-कण कहीं चिपके नहीं रह गए हैं? मुझे एक गंभीर yeast इन्फेक्शन हो जाने के बाद ही, जोकि अब भी चल रहा है, उन्हें यह एहसास हुआ कि बाथरूम को ज़्यादा साफ़ रखने की ज़रूरत है। पर उसके बाद एक नया flatmate आ गया जिसे यह सब समझाना मुश्किल था। एक बार उसने सफ़ाई करने से मना कर दिया, यह कह कर कि "इससे फर्क क्या पड़ता है" ? मेरे एक और फ्लैट मेट को सब साफ़ करना पड़ा और मैं अपने कमरे में गुस्से में भुनभुनाती रही।

B: हाँ! मुझे अपने पति को यह समझाना पड़ा कि क्यूंकि मैं जब भी शौच जाती हूँ, मुझे पात्र पर बैठना ही पड़ता है यह ज़रूरी है कि वो साफ़ रहे। यह बहुत नहीं है के वह मूत्र हेतु सीट ऊपर उठाते हैं। कीटाणु स्थायी नहीं रहते। हर जगह जहाँ मॉल-मूत्र के दाग या कण रह जाते हैं, उन सब जगहों को साफ़ करने की ज़रूरत होती है। हालात सुधर रहे हैं, हाँ, पर सफाई और रसोई के काम अभी भी मेरे ज़िम्मे ज़्यादा हैं। ऐसा नहीं है कि उन्हें लगता है कि यह मेरा ही काम है पर वह यह सारे काम वे इतनी गंभीरता से नहीं लेते जैसे कि मैं लेती हूँ। घर का काम अंत में करना तो पड़ता ही है। और मुझे ही उसकी परेशानी ज़्यादा रहती है।

गृहकार्य से स्ट्राइक उलझी सी चीज़ है। गृहकार्य न करने वालों का अंधापन इस स्ट्राइक तो पहचानने में ही सदा लगा देगा।

श्रम के इस विभाजन को कैसे तोड़ा जाए?

M: हाँ और हो सकता है कि यह सब हमारे कॉलेज के काम और अंक आदी को प्रभावित नहीं करता हो ...

R: ... पर परेशानी तो होती ही है! जब घर का काम करने को पड़ा हो और आप कॉलेज का काम कर रहें हों तो मन में यह चलता ही रहता है की बाकी कितना काम पड़ा है।

B: मुझे कहते हुए ही अजीब लगता है की अब मैं बाहर का खाना पचा ही नहीं पाती हूँ। मेरा पेट और मेरे हॉर्मोन्स मेरे पति के मुकाबले संवेदनशील हैं। शुरू में मुझे घर का खाना खाने पर काफ़ी दबाव देना पड़ा। पर आखिरकार वे बात समझ गए। पर कॉलेज का काम कभी खत्म ही नहीं होता (हमेशा पढ़ने के लिए कुछ न कुछ रहता ही है) और यह आसान लगता है कि हम खाना ना बनाएँ और कुछ मँगवा लें। हमें खुद को यह समझाना पड़ता है कि हम सारा समय कॉलेज के काम को नहीं दे सकते। और, जब मैंने काम करना शुरू किया तो मैं यह सब सँभालने में ज़्यादा माहिर थी। मेरे पति ने यह मुझसे पहले महसूस किआ और यही नहीं, मुझसे पहले ही उन्होंने बेहतर संभालना भी शुरू किआ! पर मेरे घर के बाहर काम करना शुरू करने से पहले, उन्हें और मुझे, दोनों को ही किसी स्तर पर लगता था कि मेरे लिए घर का काम करना ज़्यादा आसान है।

R: पता है जब हम लोगों ने साथ में रहना शुरू किआ तो मुझे यह काफी संदेहास्पद लगा कि उन सब लोगों ने कहा कि हम सब साथ में रहेंगें और सारा काम मिल बाँट कर करेंगे। उन्हें जल्द ही यह समझ आ गया कि यह इतना सरल नहीं है अगर एक साथी को ज़्यादा सफाई और इसीलिए ज़्यादा काम की ज़रूरत है। पर एक समय तक तो उन सभी को लगा कि हम सब समान काम कर रहे थे। जब मेरा गुस्सा उफ़न पड़ता था तो उसे ओवर रिएक्शन समझा जाता है।

गृहकार्य और सेवाकार्य, कसी को तो करना होता ही है। ज्यादातर इसे करने वाली मिहला होती है, वेतन के साथ या उसके बिना। यूनिवर्सिटी मजदूरों के घरों में लगता है जैसे मर्दों और महिलाओं की ज़रूरतें और उन पर पड़ता गृहकार्य का बोझ अलग अलग होता है।

काम के बोझ का यह अंतर घर में ही नहीं, यूनिवर्सिटी में भी विभाजन का कारण बनता है। अगर एक छात्रा अपने रूममेट से ज़्यादा समय गृहकार्य में लगाती है तो इसका असर कक्षा में उसके कार्यसामर्थ्य पर नाकारात्मक होता है। सिस्टम उसे उसकी इस निष्फलता के लिए दण्डित करेगा। अगर इस सिस्टम को नहीं बदला तो।

M: हाँ। इन सब को ज़्यादातर यह सब पता ही नहीं चलता कि कितना काम करना पड़ता है। हम सब खुद ही अपना काम और अपनी परेशानियों को अदृश्य बना देते हैं। मुझे पहले लगता था कि इसका ताल्लुक नारीवाद और सैद्धांतिक शिक्षा से है, पर अब मुझे नहीं लगता की इसका पढ़ने लिखने से कोई भी सरोकार है। मेरे भाई ने भी नारीवाद पढ़ा है, पर लगता नहीं कि उसका कोई भी असर हुआ है।

R: मुझे यह भी लगा कि मेरे फ्लैट मेट्स जो भी नारीवाद काफी पढ़ चुके हैं और मुझे लगता था कि नारीवादी हैं, उन्होंने अपने सिद्धांतों को कभी भी असल घर के कामों के स्तर पर लाकर नहीं देखा। "अदृश्य करना" ही वे शब्द हैं जो मुझे इस्तेमाल करने पड़े। जब मैने अपनी परेशानी को नारीवाद की भाषा में पेश किया तब जाकर उन सब ने इस बात पर गौर किया। जब मैंने उनका ध्यान इस तरफ़ खींचा तो वे लोग काफ़ी चौंक गए कि वे लोग असल ज़िन्दगी में इस तरह का व्यवहार करते हैं। इससे पहले, जब मैं यही बात बिना तकनीकी शब्दों के इस्तेमाल के कह रही थी, तो कोई भी असर नहीं हुआ। उससे पहले तो होता था -" हाँ तो आज तुम मेरे लिए कर दो, मैं भी तो तुम्हारा काम करता हूँ"- बिना ये सोचे कि मैं उनका काम कितनी बार पहले ही कर चुकी हूँ। ऐसा लगता है कि सिर्फ नारीवादी होने का तमगा ही मायने रखता है।

B: हाँ। ऐसा लगता है कि ये सभी लोग सिद्धान्त और तुच्छ रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में फ़र्क रखने की पूरी कोशिश करते हैं। क्या आप सबका इन पुरुषों से जो रिश्ता है क्या वह बदला है?

M: मैं यह मानती हूँ कि कई बार मैं प्रार्थना करती हूँ कि मेरा भाई मेरे साथ ना रहे। अब हम लोग किसी बार में बातचीत नहीं करते। मुझे ऐसे लोगों से सौहार्दिक संबंध बनाए रखना कठिन लगता है जो आपके द्वारा किए गए उन्हीं के कामों को किसी गिनती में ही नहीं गिनते।

R: मेरा मेरे साथ रहने वालों से रिश्ता भी बिगड़ गया क्यूंकि मुझे यह समझ ही नहीं आया कि कैसे कोई एक मित्र भी हो सकता है और अपने काम को दूसरों से करवाने के बारे में इतना संवेदनहीन हो सकता है। अंत में बात यही है कि इनका नारीवाद से जो सम्बन्ध है वह असल ज़िन्दगी में बर्तन धोने तक नहीं पहुँचता।

B: बिलकुल भी नहीं। और यह साथ में संगत में रहना भी तो बिल्कुल मज़ाक है। सिर्फ सोच लेना के हम सब साथ में रहेंगे और सब काम साथ में निबट जाएगा ऐसा नहीं होता। इसके लिए यह ज़रूरी है की सब लोग एक दूसरे की फ़िक्र करें और यह भी सीखना पड़ता है। इसके लिए प्रतिबद्ध होना पड़ता है। मेरे पार्टनर को हमेशा काफी पछतावा रहता है और मैं भी खुद को समझाती हूँ की धीरे ही सही पर सुधार हो रहा है , पर यह बेहद धीमी और कठिन प्रक्रिया है। साथ में रहना। ... क्या बकवास है !

M: हाँ, कभी कभी मेरे भाइयों की वजह से मुझे लगता था कि जैसे मैं उन्हें घर के कामों में हाथ बटाने को कहकर उनकी व्यक्तिगत आज़ादी में हस्तक्षेप कर रही हूँ। उन्हें लगता है कि अगर मुझे गन्दगी की ज़्यादा फ़िक्र है, तो मुझे ही वो सारा काम कर लेना चाहिए। जब वे लोग कुछ काम करते भी हैं तो ऐसा जता कर के जैसे एहसान कर रहे हों।

R: बिल्कुल! मुझे उन्हें सबकुछ समझाना पड़ा की आखिर मुझे ज़्यादा सफाई क्यों चाहिये !!

B: और तो और मुझे इस डर से भी उबरना पड़ा की सब लोग मुझे 'चिड़चिड़ा' कहेंगें।

R: हाँ। और ये भी अपने आप में कितना गलत है। कितनी बार मैं चुप चाप अपने कमरे में रोती थी पर क्यूँकि अंत में मेरे गुस्से का बाँध टूट ही जाता था, सब को लगता है की मैं गुस्सैल हूँ। मैं सिर्फ यही चाहती हूँ की मेरी ज़रूरतों का ध्यान रखा जाए। क्या साथ में रहने के लिए ये ज़रूरी नहीं है ?

M: मैं कई महिलाओं को जानती हूँ जोकि खुद ही सारा काम करती हैं और अपने पुरुष मित्रों और बॉयफ्रेंड्स को कुछ भी करने को नहीं कहतीं। ये भी मेरी समझ के बाहर है।

B: हा हा हा! .... कई बार मैंने सोचा है कि मैं कोई काम नहीं करुँगी जब तक या तो मेरे पति खुद ही उसका नाम नहीं लेते, या मेरी मदद नहीं करते। चाहे इसकी वजह से रात का खाना हमें ग्यारह बजे ही क्यों ना खाना पड़े।

R: मैंने तो हड़ताल भी की। मैंने सफाई करने से मना कर दिया और हर जगह कचरा फैला रहा। अब, नारीवाद के बारे में लम्बी बातचीत के बाद हालात थोड़े बेहतर हैं। पर यहाँ तो हड़ताल भी पूरी तरह काम नहीं करती, क्यूंकि काम करने से मना करने का मतलब ये नहीं है कि कोई और काम कर देगा, या फिर यह बात किसी की नज़र में भी आएगी! तो आखिरकार वही हुआ और मुझे ही इस बात पर चिड़ कर फिर इस मसले को उठाना पड़ा ताकि घर में कुछ तो बराबरी का माहौल बने।

M: हाँ, एक बार मैंने भी फैसला किया था कि मैं पीने का पानी नहीं भरूँगी, पर फिर किसी ने भी पानी नहीं भरा ! पता है, जिस तरह से कितनी बार बात की जाती है कि लड़कों और लड़कियों कि परवरिश में कितना अंतर होता है, इनमें ऐसा मान लिया जाता है कि लड़कियों को यह सब निचले स्तर के काम सिखाए जाते हैं जैसे कि खाना पकाना और सफाई - और शायद उन्हें सिखाने चाहिए जो लड़कों को सिखाए जाते हैं क्यूंकि वे 'ऊँचे स्तर' के काम हैं। मेरा मानना है की हमें सभी को कमसकम खाना पकाने और सफाई करना तो सिखाना ही चाहिये। जब मेरी बहनें दिल्ली आती हैं तो मुझे यह सब काम करना अच्छा लगता है। हम बातों ही बातों में काम निबटा लेते हैं और मिल बाँटकर करने से काम का पता भी नहीं चलता।